IMPACT FACTOR 5.473(SJIF)
UPA NATIONAL E-JOURNAL
Interdisciplinary Peer-Reviewed Indexed Journal
Special Issue : Volume -9 : Issue-1 (March-2023)
ISSN 2455-4375

आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में दलित स्त्री पात्रों का चित्रण I

डॉ. विकास विट्ठलराव कामड़ी
हिन्दी विभाग प्रमुख
सेठ केसरीमल पोरवाल कला व विज्ञान व वाणिज्य
महाविद्यालयए कामठी, नागपुर (महाराष्ट्र)
ईमेल: vikaskamdi7@gamail.com
मो. 9096172293

सारांश -

आज सूचना और प्रौद्योगिकी के युग में हम आधुनिक से उत्तर आधुनिक होते जा रहे हैं। यह प्रवृत्ति हमें भूमंडलीकरण, व्यावसायिकता, आजीविकावाद, उपभोक्तावाद और भौतिकवाद की ओर ले जा रही है। पूँजीवाद, मनुष्यता की मर्यादाओं को तोड़कर मनुष्य की भावात्मक आत्मीयता को नष्ट कर रहा है। मनुष्य उन्नति के लिए अर्थ का दास बनकर उसके पीछे दौड़ रहा है। वह समाज और राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भूल रहा है। देश में , स्त्रीया अविश्वास, घृणा, उपेक्षा तथा अपमान जैसी यातनाओं को झेलते हुए अपनी विकलांगता को नष्ट करना चाहती हैं। इन्हीं प्रश्नों से जुड़ा दलित स्त्री विमर्श, मनुष्यता के पक्ष में प्रतिपक्ष की भूमिका निभा रहा है। उनकी परिधि भले ही सीमित हो पर वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर है। उनका लक्ष्य समाज के हर स्त्री को उसका जन्मसिद्ध मौलिक अधिकार, नागरिकता और आत्मसम्मान पाने का है। जो स्त्री दलित साहित्य समाज के दायरे से वंचित रही, आज उनके साहित्य का स्वर मुखर हो चुका है। आज भाषा और साहित्य के सामने अनेक प्रकार की चुनौतियाँ खड़ी है। कुछ समय तक दलित स्त्री साहित्य, हाशिए पर थे, परंतु आज साहित्य में यह महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। परिणामस्वरूप वर्तमान साहित्य में आज जिन विमोर्शों की विशेष चर्चा हो रही है वे हैं – दलित स्त्री विमर्श। क्रांतिकारी परिवर्तनवादी दलितों को, स्त्रियों को, अपने अस्तित्व और अधिकारों का अहसास हुआ है।

दलित स्त्री विमर्श आज के समय में काफ़ी चर्चा का विषय है। अपने अस्तित्व और अस्मिता के प्रति मनुष्य जब सजग हो उठता है, तो उसकी अभिव्यक्ति के लिए वह छटपटाने लगता है। साहित्य के द्वारा वह अपनी छटपटाहट को लेखनीबद्ध करता है। यही दलित स्त्री विमर्श की विशेषता है।

इस उद्धरण के आलोक में मानव नियति के प्रश्नों में जो उभरकर आए हैं, वे हैं - ‘‘स्त्री के प्रश्न , वृद्धों के प्रश्न , बालश्रम के प्रश्न , किन्नरों के प्रश्न , सेक्स वर्कर्स के प्रश्न । इन सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न बनकर उभरें हैं – दलित स्त्रियों के प्रश्न । सदियों से दबे-कुचले, शोषित भूखे और अस्पृश्य मनुष्य की चिंताएँ भूमंडलीकरण ने विचार के केंद्र में लाकर रख दीं। सूचना क्रांति (मीडिया) ने इसमें संवाहक का काम पूरी तरह से निभाया हैं। अछूत समस्या व दलित समुदाय के उत्थान का भाव भारतीय नवजागरण में समाज सुधार के आंदोलनों में निहित रहा है। किंतु, दलितों के प्रति वर्ण व्यवस्था, जातिगत भेदभाव, छुआछुत तथा अनेक प्रकार के अपमानजनक शोषण का स्वरूप इतना मुखर नहीं हुआ था। वस्तुतः हिंदी कथा साहित्य के सम्राट कहे जाने वाले प्रेमचंद से सहानुभूतिपूर्वक दलित विमर्श आरंभ हुआ। भैरव प्रसाद गुप्त, नागार्जुन, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि रचनाकार दलितों की समस्याओं का अंकन करते रहें। रेणु, रांगेय राघव, शैलेश मटियानी जैसे परवर्ती कथाकार भी दलित विमर्श पर केंद्रित उपन्यासों की रचना करते रहे।

कालांतर में नब्बे के दशक के बाद दलित स्त्री विमर्श सत्ता विमर्श में तब्दील होता दिखाई देता है तथा दलित लेखन में दो तरह के रचनाकारों की एक लंबी सूची दिखाई पड़ती है, जिन्होंने दलित विमर्श को विभिन्न दृष्टिकोण से देखा परखा। इनमें एक वर्ग था, गैर दलित लेखकों का जैसे शीव प्रसाद सिंह, जगदीशचंद्र, शैलेश मटियानी, गिरिराज किशोर, मैत्रेयी पुष्पा, मदन दीक्षित आदि। दूसरा वर्ग था स्वयं दलित समाज से आने वाले लेखकों का जिसमें ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जय प्रकाश कर्दम, अभय मौर्य, अजय नावरिया आदि।

संकेत शब्द: *अस्पृश्य, उन्नति, आत्मसम्मान, शोषण, अस्तित्व, भेदभाव , छुआछुत*

हिंदी कथा-साहित्य में दलित चेतना की शुरुवात करने में मुंशी प्रेमचंद का नाम उल्लेखनीय है। प्रेमचंद ने किसानों, स्त्रियों और दलितों को विषय बनाकर अनेक उपन्यास और कहानियों की रचना की। दलितों से सीधे संबंध रखने वाली उनकी कहानियों में प्रमुख हैं - 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', 'कफ़न', 'मंदिर' और 'सवा सेर गेहूँ' इत्यादि। इन कहानियों में प्रेमचंद ने दलित विषयक अपना दृष्टिकोण रखा है। 'ठाकुर का कुआँ' के बारे में प्रो. मैनेजर पांडेय ने लिखा है कि ''ठाकुर का कुआँ'' केवल एक कुआँ नहीं है, बल्कि सारा हिंदू समाज ठाकुर का कुआँ है, जिसमें अछूतों को डूब मरने की सुविधा तो है, पीने का पानी लेने की सुविधा नहीं है।''[1] प्रेमचंद ने 'कफ़न' कहानी में घीसू और माधव चमारों का अमानवीय होना चित्रित किया है।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के उपन्यास 'बुधुआ की बेटी' में आश्रय विहीन भंगी जाति की स्त्री की समस्याओं का चित्रण है। मनुवादी समाज ऐसी स्त्रियों को आश्रय नहीं देता। डॉ. कुसुम मेघवाल के अनुसार ''हिंदी का यह पहला उपन्यास है, जिसमें भंगी जाति की पात्री को नायिका का स्थान प्राप्त हुआ है।''[2] अर्थात गैर दलित उपन्यासकारों द्वारा रचित किसी भी हिंदी उपन्यास में दलित पात्रों को सम्मानीय नायकत्व प्रदान नहीं किया है।

दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार केवल हिंदू सवर्णों ने ही नहीं किए, बल्कि मुस्लिम नवाबों ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी। विशेषकर दलित स्त्रियों पर दोनों के कहर बरसते रहे हैं। उदाहरण के लिए, असगर वजाहत का उपन्यास 'सात आसमान' का उदाहरण देखा जा सकता हैं। यह उपन्यास नवाबों-जमींदारों की ज़िंदगी के बारे में है। जायज-नाजायज ज़मीनों और संपत्तियों पर कब्जा होने के कारण दूसरों को गुलाम रखने, औरतों का इस्तेमाल करने, रंड़ीबाजी करने, रखैल रखने और मजबूर की अस्मत लूटते रहने के शौकीन नवाबों की अनेक कहानियाँ इस उपन्यास में संकलित हैं। दलित और पिछड़ी जातियों की स्थितियों का यथार्थ चित्रण इस उपन्यास के प्रसंगों से मिल जाता हैं। उदाहरण देखें - ''मुश्ताक कहते थे कि है कोई माई का लाल, बड़े से बड़ा सैयद या ब्राह्मण, जो यह कह दे कि उसने चमारिन के गाल नहीं चूमें ? और अगर गाल चूम लिए तो उसके हाथ से खाने से क्या परहेज ?''[3] इस रचना में दलितों की उपेक्षित स्थिति से जाहिर होता है कि भारतीय समाज में वर्ग की स्थिति नहीं, वर्ण प्रमुख है। सामाजिक दशा के साथ-साथ माली हालत सामने आई है। इससे स्थिति को समझने में मदद मिलती है, जो मुक्ति के सवाल को और ज्वलंत कर देता है। भारत को आज़ादी मिले 75 वर्ष हो गए। भूमंडलीकरण और उदारीकरण की आर्थिक नीतियों के बावजूद आज भी ऐसी अभागी जनजातियाँ हैं जो आज़ादी का अर्थ ही नहीं जानतीं। मैत्रेयी पुष्पा ने अपने उपन्यास 'अल्मा कबूतरी' (2000) में ऐसी ही कथा रचना का सृजन किया है, जिन जातियों का ना कोई ठिकाना है, ना उनकी अपनी ज़मीन। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था ने इन्हें 'जरायमपेशा' जाति घोषित कर न केवल

तथाकथित सभ्य समाज की नज़रों में उपेक्षित और घृणित बना रखा है, वरन पुलिस अत्याचार का शिकार भी यही जातियाँ अधिक रही हैं।

'कबूतरा' बुंदेलखंड में बसने वाली एक जाति है, जिनके पास जीविकोपार्जन का कोई सम्मानजनक साधन नहीं है। इनके पुरुष अपराधकर्म और स्त्रियाँ देह व्यापार के लिए विवश हैं। सभ्य समाज जिन्हें वे 'कज्जा' कहते हैं, का कबूतरा समाज से संघर्ष ही उपन्यास का मुख्य विषय है। भूरी, उसके बेटे राम सिंह और बेटी अल्मा की कथा इसी टकराहट की कहानी है। मंसा केहर से कहता है - ''मैं मानता हूँ कि तू अच्छा है, इसलिए कि उन लोगों के लिए हमदर्दी रखता है, जिनके पीछे कोई नहीं। उनकी जरा-सी भूल को क्या तूल दिया जाता है। साले दरोगा, एस. पी. फैसपियों की नीयत खूब पहचानता हूँ मैं। जनता को कलम से हर तरफ से लूटने वाले सोचते हैं, उन्होंने आला बयान लिख डाले। फलाँ कबूतरा ने फलाँ किसान के खेत से चने का दस पौध उखाड़ लिए, हरित क्रांति को खतरा है। साईकिल की चेन उतार ली, गरीब की सवारी पर हमला है।''[4] दरअसल भूमंडलीकरण ने एक तरफ दलितों की स्थिति और संघर्ष को रेखांकित भी किया है, तो दूसरी ओर दलितो के नाम पर, गरीबों के नाम पर, शोषितों के नाम छद्म कल्याणकारी योजनाओं के नाम पर लूटतंत्र भी खड़ा किया है।

'जस तस भई सवंर' सत्यप्रकाश का उपन्यास 1999 में प्रकाशित हुआ है। शीर्षक से ज्ञात होता है कि जैसे-तैसे सवेरा हुआ है यानी दलितों में चेतना जागी है। इसमें गैर दलित पात्र भगत हरसन्ना और चैधरी देवीपाल सिंह पुलिस भी इनके साथ हैं। ये दलितों के विरुद्ध मोर्चा बनाकर खड़े हैं। दलित पात्र हंसा और सुनहरी अशिक्षित होने के साथ-साथ अंध-श्रद्धालु व अंधविश्वासी हैं। भगत व चैधरी इन दोनों को दुश्चक्र में फँसाएँ रखने का षड्यंत्र करते रहते हैं।

यह उपन्यास एक तरफ समाज से व्याप्त अशिक्षा, अंधविश्वास और अंधश्रद्धा का चित्रण करता है, तो दूसरी तरफ लेखक ने चौधरी देवीपाल सिंह, भगत हरसन्ना जैसे चरित्रों का निर्माण करके यह दिखाने का प्रयास किया है कि दलितों के पतन के कारणों में प्रमुख रूप से अज्ञानता, अशिक्षा, अंधश्रद्धा है। ये दोनों खलनायक हंसा और सुनहरी को धर्म की आड़ में मूर्ख बनाते हैं। उन्हें कर्ज में फँसाते हैं। हंसा के जागरुक भाई को भी झूठे आरोप में जेल भेजते हैं। दोनों भइयों से बीच दूरी बनाने का षड्यंत्र करते हैं। 'फूट डालो, राज करो' की नीति वे अपनाते हैं। चौधरी व भगत की धूर्तता यहीं समाप्त नहीं होती है। दलित समाज की स्त्री पात्रों धुसिया, सन्नों, रामरती, सुमरिन इत्यादि महिलाओं का चौधरी शारीरिक शोषण करता है। उपन्यास में दलित स्त्रियाँ चौधरी के आगे विवश व पराजित हैं। वे शीघ्र ही हथियार डाल देती हैं। जब सन्नो चौधरी के कुकृत्य का विरोध करती है। वह उससे बचने का प्रयास करती है और अपनी साथिन को बचाना चाहती हैं, परंतु चौधरी की आतंकी ताकत के सामने भयभीत भी हैं। रामरती सन्नो को उसकी ताकत का अहसास इस प्रकार कराती है, ''सन्नो, तुम किस-किस की इज़्ज़त बचाओगी ? तुम अपनी इज़्ज़त की चिंता करो। चौधरी ने धुसिया को तेरे या मेरे कहने से छोड़ भी दिया तो उसकी वासना का शिकार तुझे या मुझे बनना पड़ता। चौधरी को तो औरत चाहिए। हम गरीबों की तो कहीं भी सुनवाई नहीं है। वह चौधरी है, चौधरी। किसकी मजाल है गाँव भर में जो उसके सामने मुँह खोल सकें। हमें तो चौधरी की दया पर जिंदा रहना है।''[5]

यहाँ चौधरी का आतंक अवश्य है, परंतु उसके समक्ष समर्पण भाव से क्या प्रकट होता है। स्वेच्छा से दूसरों की दया पर ज़िंदा रहना क्या यही जीवन है ? हार मानना जीवन नहीं है, यह मृत्यु तुल्य है। जीवन निरंतर संघर्ष का दूसरा नाम है। माना कि ऐसे लोगों के पास पुलिस, प्रशासन, अर्थ की ताकत अवश्य होती है। अपवाद में भले

कोई किसी की दया पर जीना पसंद करता हो या उसकी कोई मजबूरी हो, मगर वह न तो समाज का प्रतिनिधि हो सकता है, और न यह दलित स्त्रियों का स्वभाव है। उनमें खुद्दारी जबरदस्त होती है। यहाँ दलित महिलाओं की मानसिकता का न तो यथार्थ चित्रण किया गया है और न इस प्रसंग से दलित समाज को कोई प्रेरणा मिलती है। ऐसी कल्पना करना भी निंदनीय है।

इस उपन्यास में यदि कुछ नया है तो यह कि मंडल आयोग के समय का दृश्य एक झलकी की तरह उभरता है। समाज में आरक्षण का जो विरोध और समर्थन के स्वरों का वाक्युद्ध तत्कालीन समाज में चल रहा था उसी तरह का दृश्य उपन्यास में उभरा है। पात्र शिवदास जो गरीब है और सुमेधा ब्राह्मण लड़की का परस्पर भावनात्मक लगाव है। बाद में दोनों के बीच जाति और गरीबी रूपी दो दीवारें बनकर खड़ी हैं। जब शिवदास बैंक में नौकरी करने लगता है, उस समय भी चौधरी देवीपाल की कुटिल छवि प्रकट हुई है। अंत में चौधरी देवीपाल सिंह और भगत हरसन्ना के चरित्रों का पर्दाफाश होता है। हंसा को अहसास होता है कि चौधरी व भगत के कहने पर अपने भाई सरवन को गलत समझा था। यहाँ खलनायक को समझना और प्रमुख पात्रों का जागना ही दलितों की जस-तस भई सवेर है।

2007 में 'मिस रमिया' कावेरी जी का उपन्यास प्रकाशित हुआ। यह दो दृष्टियों से उल्लेखनीय है। एक यह कि अब तक के प्रकाशित उपन्यासों में पहला ऐसा उपन्यास है जिसकी रचनाकार दलित लेखिका है और दूसरी विशेषता, इसकी नायिका भी दलित लड़की मिस रमिया है, जो अपने समाज के बच्चों की स्थिति को लेकर चिंतित है। इसलिए उनको एकत्र करके पढ़ाती है। बाद में यह प्रयास स्कूल में तब्दील होता है। इस तरह यह एक जिम्मेदार प्रतिबद्ध और संघर्षशिल स्त्री की गाथा है। शिक्षा की मशाल लेकर रमिया निकली है जो उसे बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर के विचारों के नज़दीक खड़ा कर देती है। यही इसकी सार्थकता है और यही इसकी विशिष्टता है। कुल मिलाकर यह उपन्यास दलित मिशन को ध्यान में रखकर लिखा गया है। कथा दलित समाज के लिए प्रेरणीय है। तत्कालीन साहित्यिक राजनीति और गुटबंदी से भी यह मुक्त है। भावाशिल्प में सरलता एवं सहजता है।

निष्कर्ष:

स्पष्ट होता है की , दलित स्त्री लेखन को, दलित विमर्श को एक नई पहचान मिली है और इसके प्रतिरोध सशक्त होकर समाज के सामने उपन्यासों द्वारा मुखर हुए हैं। आज दलित रचनाकार अपनी पीड़ा को सच्चाई के साथ प्रकट कर रहा हैं वह दलितों स्त्री की स्थिति और संघर्ष को रेखांकित कर रहा है, तो दूसरी ओर दलितों के नाम पर, गरीबों के नाम पर, शोषितों के नाम छद्म कल्याणकारी योजनाओं के नाम पर लूटतंत्र खड़ा किया है। सही मायने में स्त्री दलितों व शोषितों की सामाजिक अस्मिता केंद्र में आना अभी शेष हैं तथा इसका प्रयास दलित स्त्री विमर्शों द्वारा हो रहा है।

संदर्भ

- मैनेजर पांडेय - हंस, अक्टू. 1992, पृ. 73
- कुसुम मेघवाल - हिंदी उपन्यासों में दलित वर्ग, पृ. 53, संधी प्रकाशन, सं. 1985
- असगर वजाहत - सात आसमान, पृ. 18, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998
- मैत्रेयी, पुष्पा - अल्मा कबूतरी, पृ. 15, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004
- सत्यप्रकाश - जस-तस भई सवेर, पृ. 14, कामना प्रकाशन, दिल्ली, 1999